# योजना

## (दशम् सर्ग)

**सार छन्द**

द्वैपायन सर तीर पड़े कुरू,
के घायल भूपति को ।
करके नमन चले वे तीनों,
धर विषण्ण[१] आकृति को ।
प्राप्त कर रहे भोज[२] द्रौणि कृप,
के रथ अप्रतिम गति को ।
कौन जानता क्या वांछित है,
अति बलवती नियति को ।।१।।

दक्षिण दिशा ओर जाकर वे,
पहुँचे पास शिविर के ।
जहाँ पाण्डु पाञ्चाल सैन्य के,
अङ्ग स्थित थे घिर के ।
पाण्डव वीरों का स्वर सुनकर,
चिन्तित वीर त्रयी थी ।
उन्हें खोजनी निज-गोपन[३]-क्षम,
प्रान्तर[४] भूमि नई थी ।।२।।

पूर्व दिशा में चले दो घड़ी,
थककर चूर हुए थे ।
घोर विपिन[५] में पहुँच शत्रु के,
भय से दूर हुए वे ।
सघन अरण्य विलोक महारथ,
तीनों ही थे हर्षित ।
कर लेगें विश्राम रात्रि में,
अरि से यहाँ अदर्शित ।।३।।

बोल रहे वन सत्व घोर स्वर,
कूजित विविध विहंगम ।
सघन लताएं थी वृक्षों पर,
फिरते जहाँ प्लवङ्गम ।
लिपटे थे पृथु उरग तुरङ्गम,
देख उन्हें डरते थे ।
कमल युक्त जल में कारण्डव,
क्रीड़ा बहु करते थे ।।४।।

उन्नत विपुल प्रशाखयुक्त वट,
सघन वहाँ पर देखा ।
विश्राम स्थल वीर त्रयी ने,
तत्क्षण उसको लेखा ।
उतरे रथ से, आयुध रखकर,
खोल दिए फिर घोड़े ।
उन्हें पिला जल, कर अवगाहन,
सन्ध्यारत कर जोड़े ।।५।।

अस्ताचल को गए तमोहर[६],
तूर्ण[७] वहाँ तम छाया ।
निशाचरी सत्वों ने फिर स्वर,
अपना घोर सुनाया ।
तारकयुक्त हुआ अम्बर ज्यों,
जटित निशा का अम्बर[८] ।
फैला ज्यों सब प्राणभृतों को,
देने शांति - सुधा वर ।।६।।

श्रान्त और व्रणखचित[९] देह थी,
हुए वीर भू शायी ।
निशा क्रोड़ में ओढ तमांचल,
निद्रा उनको आयी ।
सात्वत[१०] शारद्वत[११] दोनों ही,
गहन नींद में सोए ।
द्रौणायनि पर जाग रहे थे,
विषम चिन्तना खोए ।।७।।

आज मुमूर्षु सुयोधन भूपर,
पड़े हुए जिस कारण ।
विजयी और बली उस रिपु का,
कैसे करूँ निवारण ।
जब तक केशव और किरीटी[१२],
उस दल के हैं रक्षक ।
स्वयं दण्डधर[१३] भी क्या उनके,
बन सकते हैं भक्षक ।।८।।

धर्म युद्ध से उन्हें असम्भव,
करना आज पराजित ।
अतः युक्ति से रण कौशल को,
करना होगा सज्जित ।
देखा उस न्यग्रोध[१४] शाख पर,
काक - मण्डली डेरा ।
लेते थे विश्रब्ध[१५] रजनी में,
सुख से वहाँ बसेरा ।।९।।

दीर्घकाय कौशिक[१६] को आता,
देखा कृपी - तनय नें ।
खींचा उनका ध्यान एक खग,
के आसन्न[१७] अनय नें ।
गोल मुण्ड पिंगल शरीर वह,
दीप्त - नयन भयकारी ।
दीर्घ चञ्चु शित[१८] नखर शक्तिमय,
आयत - पक्षति[१९] - धारी ।।१०।।

करता मृदुरव छिपता पहुँचा,
जहाँ ध्वांक्ष[२०] थे सोए ।
निर्भय होकर निज नीडों में,
सुख स्वप्नों में खोए ।
झपटा वह काकारि[२१] हुआ रव,
वट की प्रति शाखा पर ।
मार डालता था काकों को,
नीड़ों पर जा - जा कर ।।११।।

छिन्न शीर्ष होकर क्षतविक्षत,
गिरे भूरि वायस थे ।
पूर्ण हुए जैसे उस क्षण ही,
उन सबके आयुस थे ।
ले यथेच्छ प्रतिशोध मोदयुत,
अट्टहास वह करता ।
गया विशाल उलूक हूक से,
भय उर में था भरता ।।१२।।

देख दृश्य द्रौणायनि को द्रुत,
ही विचार यह आया ।
युद्ध नीति का इस पेचक[२२] ने,
अद्‌भुत पाठ पढ़ाया ।
क्षिप्र आक्रमण कर अरि मर्दन,
करना है मन भाया ।
आतुर हो दोनों वीरों को,
उसने आशु जगाया ।।१३।।

और कहा अब सुप्त शिविर पर,
करनी मुझे चढ़ायी ।
इस उपाय से शीघ्र परिणमित,
होगी दीर्घ लड़ाई ।
चकित हुए योद्धा वे दोनों,
दारुण निश्चय सुनकर ।
बोले शारद्वत मन ही मन,
क्षण भर तक कुछ गुनकर ।।१४।।

सो जाओ हे वत्स, मुझे तुम,
श्रान्त बहुत लगते हो ।
क्षोभ त्याग कर शांत करो मन,
भ्रान्त बहुत लगते हो।
शोकयुक्त मन और जागरण,
अतः विषैली बातें ।
करते हो तुम तात प्रवर्तित,
क्यों पैशाची घातें ।।१५।।

काम-क्रोध, लोभान्वित को है,
नींद कभी क्या आती ।
शोक - विमूढ और चिन्तातुर,
से निद्रा डर जाती ।
सुख निद्रा ले रहा विजय का,
मानी वह पितु घाती ।
चिर निद्रा उसको प्रदान कर ,
शीतल होगी छाती ।।१६।।

कार्य नृपति के दिए हुए वे,
जब तक सिद्ध, न होंगे ।
अरि के हर योद्धा के शिर पर,
बैठे गिद्ध न होंगे।
तब तक जलते मेरे उर को,
मातुल शांति कहाँ है ।
जनक वियुक्त अहा इस जन को,
अब विश्रांति कहाँ है ।।१७।

थे अमेय बल वीर विक्रमी,
तात हमारे दल में ।
किन्तु नहीं सम्बन्ध दीखता,
गुरु उद्यम में फल में ।
यथाशक्ति सब लड़े प्राण भी,
दिए भूप के कारण ।
किन्तु पराजय फल वह उद्यम,
आज कर रहा धारण ।।१८।।

बोले कृप हे तात विपश्चित[२३],
निश्चित यह करते हैं ।
दैव और पुरुषार्थ योग ही,
सुफल नित्य धरते हैं ।
पुरुष[२४]-कार में और दिष्ट[२५] में,
दिष्ट बली माना है ।
घटनाक्रम परिणाम विवेकी,
विज्ञों ने जाना है ।।१६।।

बड़े बड़े पुरुषार्थ दैव से,
हीन विफल होते हैं ।
क्षुद्र प्रयास दैव दाएं हो,
विपुल फलित होते हैं ।
भाग्य फलित केवल क्या होता,
विक्रम ही क्या फलता ।
दोनों पर आश्रित रहती है,
जग में वत्स सफलता ।।२०।।

उद्योगी की सदा प्रशंसा,
यहाँ आर्य करते हैं ।
क्योंकि सभी उद्योग विफलता,
को न सदा धरते हैं ।
निश्चित है परिणाम किन्तु हे
द्रौणि! निरूद्यम जन का ।
सुख - सम्पदा समादर रहता,
मात्र मनोरथ मन का ।।२१।।

यद्यपि है अपवाद भाग्य से,
यदि निष्क्रिय खाता है ।
बन्धु विरोध लोक निन्दा ही,
प्रायः वह पाता है ।
गर्हित[२६] होता नहीं जगत में,
असफल भी उद्योगी ।
संशित होता सफल हुआ वह,
बनता है सुख-भोगी ।।२२।।

दैव नहीं अनुकूल हमारा,
उद्यम न्यून नहीं है।
किन्तु पुत्र इससे मम मानस,
उतना दून नहीं है ।
है अदूरदर्शी दुर्योधन,
हठी और अवमानी।
घिरा कुमित्रों से रहता था,
बान्धव-द्विष अभिमानी ।।२३।।

राज्य लोभ से इसने निष्ठुर,
होकर चलीं कुचालें ।
आज चाहता सुहृद बचे जो,
इसका मान बचा लें ।
कुरु जनपद हो गया नष्ट बस,
एक व्यक्ति के हठ से ।
क्षय का बनता ग्रास मूढ़ जो,
शिक्षा लेना शठ से ।।२४।।

साधु असाधु विवेचन में यदि,
बुद्धि विकल होती है ।
सत्पुरुषों की कृपा दृष्टि से,
त्वरित विमल होती है ।
उद्वेलित मन, भ्रान्त चित्त हो,
आपदग्रस्त पुरुष का ।
पंथ निदेशित कर सकते हैं,
मात्र विज्ञ जन उसका ।।२५।।

जा धृतराष्ट्र और महिषी से,
मैं सम्पर्क करूँगा ।
और विदुर जी से वार्ता कर,
संशय सभी हरूँगा ।
अभी नहीं कर्तव्य निरूपण,
में मम बुद्धि समर्था ।
हो जाएगी द्वेष कोपवश,
सभी चिन्तना व्यर्था ।।२६।।

दीर्घ-सूत्रता[२७] यह होगी अब,
मातुल कहाँ समय है ।
प्राण त्याग देंगे कुरुनायक,
कुछ क्षण में यह भय है ।
नहीं आक्रमण यदि कर पाया,
अरि पर इस बेला में ।
शेष आयु बीतेगी मेरी,
रिपु कृत अवहेला में ।।२७।।

यदि निश्चय है यही तुम्हारा,
तात प्रात होने दो ।
थके हुए मन को, शरीर को,
कुछ मुहूर्त सोने दो ।
करना स्कन्द[२८] समान शत्रु का,
बलपूर्वक आस्कंदन[२९] ।
हम दोनों होंगे सहाय, तुम,
सुनो द्रोण के नन्दन ।।२८।।

तुम दिव्यास्त्रवान हो मैं भी,
सात्वत युद्ध विशारद ।
बड़वानल-वत शोषित करना,
हे प्रवीर रण-दारद[३०] ।
या तो कर देंगे उन्मूलित,
द्वेषण[३१] को वसुधा से ।
या दिवस्थ[३२] हो तृषा हरेंगें,
अनुपम दिव्य सुधा से ।।२९।।

सुप्त प्रमत्त अवर्म[३३] निरायुध,
शरणागत वीरों का ।
वध कर्तव्य नहीं है कथमपि,
धर्म न रण-धीरों का ।
है संकल्प तुम्हारा कुत्सित,
लांक्षित हो जाओगे ।
यश से, सुख से उभय लोक में,
वञ्चित हो जाओगे ।।३०।।

मर्यादा आश्रिता तुम्हारी,
　　　　भरद्वाज - कुल - भूषण ।
विमल शेमुषी[३४] का अघचिन्तन[३५],
　　　　से न करो सुत दूषण ।
सागर वत हो धीर वीर मत,
　　　　मर्यादा को तोड़ो ।
यश को छोड़ कृपीज व्यसन[३६] से,
　　　　तुम सम्बन्ध न जोड़ो ।।३१।।

भूरिश्रवा की भुजा रक्त से,
　　　　लिखती अमिट कहानी ।
कुछ तो लज्जा करें महारथ,
　　　　मर्यादा के मानी ।
ध्यानमग्न उस सोमदत्त सुत,
　　　　का शिर छिन्न किया था ।
किस पाण्डव का तब सात्यकि नें,
　　　　मन कुछ खिन्न किया था ।।३२।।

लेकर आड़ शिखण्डी की शर,
　　　　किसने घोर चलाए ।
किसने अपने पूज्य पितामह,
　　　　छलकर मार गिराए ।
धर्म विदीर्ण किया था तिलशः,
　　　　बेध भीष्म के तन को ।
व्यथित न कर देगी यह घटना,
　　　　किस सहृदय के मन को ।।३३।।

गुरू से भी शत्रुता निभाता,
अजातारि[३७] कहलाता ।
भार्या को भी लगा द्यूत में,
अपना मन बहलाता ।
रहा पीटता डंका ऋत[३८] का,
लोभी मिथ्याभाषी ।
छल से गुरू को भी मरवाकर,
रहा धर्म अभिलाषी ।।३४।।

युद्ध विमुख हो त्याग अस्त्र जो,
ध्यान मग्न थे बैठे ।
सुभ वध एक मात्र अङ्गज का,
शोक सिन्धु में पैठे ।
वयो बृद्ध द्विज का भी घातक,
है इनका सेनानी ।
पार्थेयों[३९] ने मातुल कितनी,
मर्यादा है मानी ।।३५।।

नहीं हमारे दल में कोई,
मनुज रुधिर का पायी ।
नहीं बाँटता स्वयंवरा को,
कोई अग्रज भाई ।
नहीं पूछते मरण मार्ग हम,
अपनें पूज्य जनों से ।
कन्याए खोजता न कोई,
वन से और जनों से ।।३६।।

दानवीर, धर्मज्ञ फँसा रथ,
चक्र निकाल रहा था।
जिसके विक्रम से हो प्रमथित,
अरि दल हार रहा था।
आयुधहीन अजेय महारथ,
पर जो बाण चलाता।
उस बीभत्सु[४०] धनुर्धर का है,
कौन धर्म से नाता।।३७।।

मार आञ्जलिक[४१] अङ्गराज[४२] के,
खुले कण्ठ[४३] का भेदन।
और असावधान सैन्धव[४३] के,
उत्तमाङ्ग[४४] का छेदन।
पाण्डव मर्यादा के उन्नत,
क्या ही ये केतन[४५] हैं।
धर्म प्रतिष्ठा हेतु पाण्डु सुत,
आर्य सदा चेतन है।।३८।।

पाण्डवेय निष्प्राण कर चुके,
मिला साथ केशव का।
क्यों ढोएं हम भार गलित उस,
मर्यादा कें शव का।
चूर्ण भीम कर चुके धर्म को,
तोड़ सुयोधन उरु को।
कौन न होगा द्रवित देखकर,
विवश पड़े उस कुरु को।।३६।।

रखो साध्य पर दृष्टि करो मत,
कुछ विचार साधन का ।
अच्युत[४६] प्रतिपादित यह पथ यदि,
सिद्धि समाराधन का ।
तो अश्वत्थामा भी बनता,
इस पथ का अनुयायी ।
इसीलिए योजना आर्य यह,
मेरे मन को भायी ।।४०।।

राष्ट्र सुरक्षा हित संकल्पित,
एकाकी सेनानी ।
आज करेगा निष्ठुर होकर,
नाश क्रिया मनमानी ।
इस ताण्डव के कारण चाहे,
गमन करूँ रौरव[४७] को ।
जय संवाद सुनाऊँगा मैं,
जा मुमूर्षु कौरव को ।।४१।।

पिता वधिक उस धृष्टद्युम्न को,
दण्ड मुझे देना है ।
अपकृति का प्रतिशोध आज अति,
चण्ड मुझे लेना है ।
इसी योजना से हो सकती,
घोर प्रतिज्ञा पूरी ।
नहीं देखता मैं अब कुछ भी,
लक्ष्य - सिद्धि से दूरी ।।४२।।

ले आयुध सतनुत्र[४८] तूर्ण वे,
चले द्रोण के नन्दन ।
सिंह-पुच्छ-केतन-युत उन्नत,
चला वेगमय स्यन्दन ।
एकाकी मत यान करो हम,
भी बनते अनुयायी ।
कृपाचार्य कृतवर्मा दोनों,
ने यह टेर लगायी । ।४३ । ।

सुख-दुख में हम साथ रहे हैं,
साथ आज भी देंगें ।
पाप-पुण्य-मय कर्म-फलों का,
भाग स्वयं भी लेंगे ।
रुद्र अनल यम के समान वे,
तीनों चले निशा में ।
यान त्रयी हो गयी तिरोहित,
झट पश्चिमी दिशा में । ।४४ । ।

**स्वागता वृत्त**

सुप्त-वैरि-दलनार्थ चले वे,
कौरवेन्द्र - हित - साधन - कामी ।
कोप-जात-तमयुक्त मनों को,
नीति-वीथि रहती अनजानी । ।४५ । ।

**घनाक्षरी**

सोचता है भोज वीर द्रौणि सा प्रतापवान,
देखता अव्यग्र हो कुबुद्धि के विकास को ।
दिव्य अस्त्रवान व्यक्तिकोप जात मूढ़ता में,
हो चुका समुद्यत प्रसुप्त वैरि त्रास को ।

स्वार्थ हेतु तर्क खोजता मनुष्य नित्य नया,
देखता परन्तु क्या विवेक के विनाश को ।
कौशिक से प्रेरणा मनुष्य ले रहा है आज,
कौन रोक पाएगा मनुष्यता के ह्रास को ।।४६।।

## सन्दर्भ सूची

१. विषादपूर्ण, २. भोजवंशी कृतवर्मा, ३. छिपाने में समर्थ, ४. वन, ५. वन, ६. सूर्य, ७. शीघ्र, ८. आकाश परिधान, ६. घावों से भरी, १०. यादव वंशी वीर कृतवर्मा, ११. शरद्वान पुत्र कृपाचार्य, १२. अर्जुन, १३. यमराज, १४. वटवृक्ष, १५. निश्चिन्त, १६. उल्लू, १७. निकटवर्ती, निकट भविष्य में होने जा रहा, १८. तीक्ष्ण पंजों वाला, १६. विशाल पंखों वाला, २०. कौवा, २१. कौवों का शत्रु, २२. उल्लू, २३. विद्वान, २४. पुरुषार्थ, उद्यम, २५. प्रारब्ध, भाग्य, २६. निन्दित, २७. टालने की प्रवृत्ति, २८. कार्तिकेय, २६. आक्रमण, ३०. समुद्र, ३१. शत्रु, ३२. स्वर्ग में स्थित, ३३. बिना कवच धारण किए, ३४. बुद्धि, ३५. पाप, ३६. आपदा, ३७. अजातशत्रु, ३८. सत्य, ३६. पाण्डव, ४०. अर्जुन, ४१. बाण विशेष, ४२. कर्ण, ४३. जयद्रथ, जो सिन्धु देश का राजा था, ४४. शिर, ४५. ध्वज, ४६. श्रीकृष्ण, ४७. नर्क, ४८. कवच धारण किये हुए।

❖